International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(4): 134-136

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(4): 134-136
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-05-2018
Accepted: 20-06-2018

अनिल कुमार
शोधच्छात्र, संस्कृत–विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

Correspondence
अनिल कुमार
शोधच्छात्र, संस्कृत–विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, भारत

योगवासिष्ठ के सन्दर्भ में, देह के बन्धन तथा मोक्ष का कारण मन

अनिल कुमार

प्रस्तावना

भारतीय अध्यात्म साहित्य विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भारतीय अध्यात्म ग्रन्थों में महर्षि वाल्मीकि प्रणित योगवासिष्ठ का सर्वोपरि स्थान है। अद्वैत की धारणा को परिपुष्ट करने वाला यह ऐसा अद्वितीय ग्रन्थ है जिसमें वेद, उपनिषद्, षड़दर्शन, गीता, बह्मसूत्र, रामायण, अष्टादश पुराण आदि के साररूप सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ में परबह्म, बह्म जगत, जीव, मन बुद्धि, अहंकार, शरीर, मृत्यु, पुनर्जन्म आदि का तात्त्विक विवेचन किया गया है जिनके अध्ययन से समस्त भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं का नाश होकर सत्यस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इस ग्रन्थ के विषय में स्वयं वाल्मीकि ने कहा है कि जो बाते इस ग्रन्थ में है वह अन्यत्र भी मिल जायेंगी परन्तु जो बाते इस ग्रन्थ में नहीं है वह अन्यत्र भी प्राप्त नहीं होगी। इस ग्रन्थ को विद्वद्जन समस्त विज्ञानशास्त्रकोश भी कहते है।[1]

इस शोधपत्र का प्रयोजन "देह के बन्धन तथा मोक्ष का कारण मन है" यह सिद्ध करना है। देह के बन्धन से तात्पर्य जन्म–मरण की बार–बार प्राप्ति से है तथा देह का पुनर्जन्म न होना ही मोक्ष है। मन शब्द मनन करने अर्थ में मन से असुन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।[2] प्राय सभी धर्म ग्रन्थों में बह्म को ही इस स्थावर– जंगम जगत् का कारण माना जाता है परन्तु योगवासिष्ठ में मन को इस सम्पूर्ण जगत् का कारण माना गया है यथा–

मनो ब्रह्मेति कथ्यते।[3]

बह्म के मनोमात्र होने के कारण उससे उत्पन्न यह सारा जगत् भी मनोमात्र ही है क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् मन के संकल्प से ही उत्पन्न होता है तथा मन के कारण ही विस्तार को प्राप्त होता है। [4] यह संसार जड़ तथा चेतन दोनों प्रकार के पदार्थो से मिलकर बना है इसलिये इस का कारण भी जड़ तथा चेतन दोनों प्रकार का होना चाहिए क्योंकि न तो केवल जड़ कारण से ही यह जगत् उत्पन्न हो सकता है और न केवल चेतन कारण ही इस जगत् को उत्पन्न कर सकता है। योगवासिष्ठ के अनुसार यह मन भी जड़ाजड़ स्वरूप कहा गया है। यह मन ब्रह्मरूप होने के कारण चेतन होता है और दृश्यरूप होने से जड़ होता है।[5] ने केवल चेतन मन संसार का कारण होता है और न ही पत्थर के समान जड़ संसार का कारण होता है अपितु जड़ तथा चेतन से मिश्रित मन ही इस जड़ाजड़ात्मक संसार का कारण होता है। उसी मन से चेष्टाओं से पूर्ण यह जग्त तथा उसके पदार्थों की उत्पत्ति होती है।[6]

जगत् का निर्माण करने वाले इस मन ने ही शरीर की भी कल्पना की है। यह शरीर मन से ही उत्पन्न होता है तथा मन के द्वारा ही पुष्ट होता है।[7] जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने कोश की रचना स्वयं करता है वैसे ही मन भी अपने निवास के लिए शरीर की कल्पना करता है इसलिए यह देह मन से ही कल्पित होता है।[8] इस संसार में ब्रह्म से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त जातियाँ और प्राणी दो शरीर वाले है। प्रथम शरीर तो मनोमय शरीर है तथा दूसरा माँसमय शरीर है मनोमय शरीर शीघ्र कार्य करने वाला तथा सदैव चंचल रहता है। यह तीनों लोकों में प्राणियों के स्वाधीन होता हुआ भी स्वाधीन नहीं होता है। दूसरा माँसमय शरीर अकिंचित्कर है जो सभी लोगों को प्रत्यक्षरूप में दिखाई देता है [9] यह मांसमय शरीर मनोमय शरीर के अधीन होता है। इसके मन के अधीन होने के कारण इन्द्रियाँ तथा बुद्धि भी मन के अनुसार प्रवृत होती है। यह मन जिस प्रकार के भावों से युक्त होता है उसका वशवर्ती शरीर भी वैसा ही हो जाता है।[10] इसलिये शरीर, बुद्धि तथा इन्द्रियों के द्वारा की जाने वाली समस्त क्रियांए व चेष्टाएं मन के द्वारा ही प्रवर्तित होती है क्योंकि मन ही समस्त क्रियाओं तथा चेष्टाओं का कर्ता है।[11] इसके बिना इस संसार में कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता है।[12]

मन का चंचल स्वभाव सर्वत्र मान्य है। योगवासिष्ठ के अनुसार चंचलता मन का धर्म है।[13]

चंचलता के कारण ही यह मन किसी विषय पर स्थिरता के साथ नहीं टिकता है। इस संसार में भाव, अभाव, उपादान तथा त्यागदि प्रतीतियाँ जो भी चेतन में कल्पित होती है उनका कारण यह मन ही है। मन की चपलता के कारण ही चेतन में इनकी प्रतीति होती है।[14]

परस्पर विरोधी स्वभाव वाले मन तथा शरीर की एक स्थानता कभी भी सुखदायक नहीं हो सकती क्योंकि ये दोनां परस्पर दुःख देने वाले है। मन की चंचलता के कारण जो भी दुःख उत्पन्न होते हैं उनका भोग शरीर को करना पड़ता है तथा वह शरीर उन दुःखों से तापित होकर निरन्तर मन को मारने की इच्छा करता रहता है। इस प्रकार परस्पर विशेधी स्वभाव होने के कारण इनके संगत होने से कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।[15]चंचल स्वभाव वाला मन निरन्तर वृतियों का संकल्प करता हुआ भटकता रहता है। वह क्षणमात्र के लिए भी किसी एक विषय पर स्थिर नहीं रहता है।[16] सकंल्प से उत्पन्न मन की विषयवासना के कारण ही शरीर अन्यान्य भोगों तथा कर्मों का अनुष्ठान करता है जिससे संस्कारों की उत्पति होती है। ये संस्कार ही व्यक्ति के जन्म–मरण का कारण होते है। संस्कारों के रहने पर यह मन एक देह का नाश हो जाने पर पुनः देह की कल्पना करता है और नवीन देह को प्राप्त करता है।[17] इस प्रकार एक देह के नाश हो जाने पर पुनः देह कल्पना करने वाला यह मन ही देह बन्धन रूपी परमदुःख की प्राप्ति का कारण है।[18]देहबन्धन का कारण यह मन तब तक जीव को देहबन्धन में डालता रहता है जब तक इसका स्वयं उपशमन न हो जाये। मन के नाश से ही पुरुष देहबन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है क्योंकि मनोनाश ही कल्याण का शीघ्रतम उपाय है।[19] जिस मन को आत्मविवेक नहीं हुआ उसके द्वारा शरीर चाहे नाश को प्राप्त किया गया हो चाहे नहीं किया गया है वह आपत्तियों का स्थान बनकर अनर्थ की ही सृष्टि करता है। [20] इसलिये हमेशा मन के नाश के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि मन का नाश हो जाने पर देहनाश स्वंय ही हो जाता है परन्तु देहनाश होने पर मन का नाश नहीं होता है।[21]

योगवासिष्ठ के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के तीन ही उपाय हैं जिनमें पहला है एकतत्त्व का दृढ़ाभ्यास, दूसरा है प्राणों का विलय तथा अन्तिम है मन का निग्रह। इन तीनों उपायों में मन का निग्रह ही मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन है क्योंकि मनोनाश से ही शीघ्रता से आत्मसाक्षात्कार होता है।[22] अतः मोक्षप्राप्ति के लिए मनोनाश आवश्यक है। इस मन का नाश करने में केवल मन ही समर्थ होता है। इसलिए मन का वश में करके मन के द्वारा ही उबारने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि संसार भावना में लगा हुआ मन यदि मन से ही नहीं उबारा जाता है तो उसको उबारने का अन्य कोई उपाय नहीं है।[23] इसलिए बाह्य तथा आभ्यान्तर दृष्टियों का त्याग करके मन से मन का नियमन कर बाह्य तथा आभ्यान्तर पदार्थो के साथ संकल्पों का भी विनाश करना चाहिए। [24] मनोनाश के लिए मन को शास्त्रों के अभ्यास, प्रबल वैराग्य तथा सज्जनों के संग से निर्मल करना चाहिए और निर्मल मन को अभ्यास पूर्वक परमतत्त्व में स्थिर करना चाहिए। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करने पर तत्त्वज्ञान हो जाता है[25] और समस्त संसार आत्मरूप ही प्रतीत होने लगता है। इस अवस्था में यह मन वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है। [26]इस मन का नाश हो जाने पर सभी प्रकार के दुःखों का समूल नाश हो जाता है और परमपुरुषार्थ की प्राप्ति हो जाती है।[27]

इस प्रकार योगवासिष्ठ के अनुसार यह मन ही इस संसार तथा देह का कारण है। मन के संकल्पमात्र से ही देह की उत्पत्ति होती है तथा मन के संकल्प से ही देहनाश होता है। इस प्रकार जन्म–मरण के बन्धन में पड़ा हुआ यह देह मन के नष्ट हो जाने पर समूल नष्ट हो जाता है और जीव अपने परमात्म स्वरूप में स्थित हो जाता है। इस प्रकार ठीक ही कहा गया है कि

मनो हि मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।[28]

सन्दर्भ सूची

1. यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।
   इमं समस्तविज्ञानशास्त्रकोशं विदुर्बुधा।। योगवासिष्ठ, 3–8–12
2. शब्दकल्पद्रुम, पृष्ठ संख्या, 606
3. मनो ब्रह्मेति कथ्यते। योगवास्ष्ठि, 3–2–54
4. मनोमात्रं जगत् कृत्स्नं मनः पर्यन्तमण्डलम्।
   मनो व्योम मनो भूमिर्मनो वायुर्मनो महान्। योगवासिष्ठ, 3–110–15
5. जड़ाजड़ मनो विद्वि संकल्पात्म वृहद्वपुः।
   अजडं ब्रह्म रूपत्वाज्जडं दृश्यात्मतावशात्।।योगवासिष्ठ, 3–91–31
6. न चेतनं न च जडं तस्माज्जगाति राघव।
   मनः कारणमर्थानां रूपाणमिव भासनम्।।, योगवासिष्ठ 3–96–64
   न चेतनं न जड़ं यदिदं प्रोत्थित मनः।
   विचित्र– सुख– दुःखेहं जगदभ्युदितं तदा।। योगवासिष्ठ , 3–96–61
7. संकल्पेन मनः पुष्टवा शरीरं बालयक्षवत्।। यागवासिष्ठ 5–53–56
8. मनसा कल्पितं सर्वं देहादि भुवनत्रयम्।। योगवासिष्ठ 4–45–5
9. आब्रह्म स्थावरान्तं च सर्वदा सर्वजातयः। यागवासिष्ठ 3–92–9,10
10. यन्मयं हि मनो राम देहस्तदनु तद्वशः।
    तत्तामायाति गन्धान्तः पवनोगन्धतामिव।। योगवासिष्ठ, 4–21–16
11. मनो कि जगतां कर्तृ मनो हि पुरुषः परः।
    मनः कृतं कृतं लोके न शरीर कृतं कृतम।। योगवासिष्ठा 3–89–1
12. यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते। यजुर्वेद, 34–3
13. चंचलत्वं मनोधर्मो वह्नेधर्मो यथोष्णता। योगवासिष्ठ, 3–112–5
14. भावाभावग्रहोत्सर्ग नापि सत्यास्ता मनश्चापलकारिता।। योगवासिष्ठ, 4–20–3
15. संकल्पेन मनः – – – – – इच्छति। योगवासिष्ठ, 3–53–56,57
16. अहो नु चंचलमिंद प्रत्याहृतमपि क्षणात्। योगवासिष्ठ, 5–82–12
17. क्षीयते मनसी क्षीणे देहः प्रक्षीणवासनः।
    मनो न क्षीयते क्षीणे देह तत्क्षपयेन्मनः। योगवासिष्ठ, 5–53–66
18. मनो मननमात्रेण दुखं परमवाप्यते।। योगवासिष्ठ, 3–112–9
19. मनोविलयमात्रेण विश्रान्तिरूपजायते।। योगवासिष्ठ, 3–111–32
20. नष्टानष्टमनर्थाय शरीर परमापदाम्।
    अलब्धात्मविवेकेन मनसा सुप्रजायते।। योगवासिष्ठ, 5–53–62
21. क्षीयते मनसी क्षीणे देह तत्क्षपयेन्मनः।। योगवासिष्ठ, 5–53–66
22. एकतत्त्वघनाभ्यासः प्राणानां विलयस्तथा।
    मनो विनिग्रहश्चेति मोक्षशब्दार्थसंग्रहः।।
    त्रिष्वेतेषु प्रयोगेषु मनः प्रशमनं वरम्।
    साध्यं विद्वि तदेवाशु यदा भवति तच्छिवम्।। योगवासिष्ठ, 6–1–69–27से 29
    – मनोमारणमात्रेण साध्येन स्वात्मसंविद।। योगवासिष्ठ, 3–111–13
23. मन एव समर्थं वो मनसो दृढ़निग्रहे।।
    भवभावनया मग्नं मनसैव न चेन्मनः।
    बलादुत्तार्यते राम तदुपायोऽस्ति नेतरः।। योगवासिष्ठ, 3–112–19, 20
24. सर्वा दृष्टीः परित्यज्य नियम्य मनसा मनः।
    स बाह्याभ्यान्तरार्थस्य संकल्पस्य क्षयं कुरू।। योगवासिष्ठ, 4–53–38
25. पूर्वं राघव शास्त्रेण वैराग्येण परेण च
    तथा सज्जनसंगेन नीयतां पुण्यतां मनः।। योगवासिष्ठ, 5–5–14

26. एवं सत्यावबोधेन स्वात्मैवेदमिति स्थिति।
मनः सुगलित विद्वि सूर्यभासा तमोयथा।। योगवासिष्ठ, 5–14–62
27. महोदयो मनोनाशो महोच्छेदस्य तूदयः।। वही, 3–102– 39
28. मनो हि मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो। ब्रह्मविन्दू उपनिषद् 2–3